INTERNATIONAL JOURNAL OF HISTORY

E-ISSN: 2706-9117
P-ISSN: 2706-9109
www.historyjournal.net
IJH 2025; 7(8): 13-15
Received: 02-05-2025
Accepted: 09-06-2025

डॉ. सोनिका भारती
शिक्षिका (सामाजिक विज्ञान) उत्क्रमित उच्च माध्यमिक विद्यालय बिशनपुर, नाथनगर, भागलपुर, बिहार, भारत

Corresponding Author:
डॉ. सोनिका भारती
शिक्षिका (सामाजिक विज्ञान) उत्क्रमित उच्च माध्यमिक विद्यालय बिशनपुर, नाथनगर, भागलपुर, बिहार, भारत

गांधी से महात्मा बनने का सफर

सोनिका भारती

DOI: https://doi.org/10.22271/27069109.2025.v7.i8a.485

सारांश
मोहनदास करमचंद गांधी, जिन्हें महात्मा गांधी के नाम से जाना जाता है, का जीवन एक लंबी नैतिक यात्रा का परिणाम था। उन्होंने सत्य, अहिंसा और आत्मसंयम जैसे सिद्धांतों को अपने जीवन में उतारा, जो भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के लिए महत्वपूर्ण थे। गांधी का प्रारंभिक जीवन सत्य, आत्मसंयम और करुणा के अभ्यास से भरा था। दक्षिण अफ्रीका में नस्लीय भेदभाव के खिलाफ संघर्ष ने उन्हें सत्याग्रह का जन्मदाता बना दिया। भारत लौटने के बाद, उन्होंने जनसंघर्षों का नेतृत्व किया, जिसमें चंपारण, खेड़ा और दांडी यात्रा शामिल थीं। गांधी ने असहमति के बावजूद अहिंसात्मक प्रतिरोध को प्राथमिकता दी। उनका जीवन यह दर्शाता है कि नेतृत्व केवल सत्ता से नहीं, बल्कि नैतिकता, त्याग और लोकसेवा से उत्पन्न होता है। गांधी का 'महात्मा' बनना एक नैतिक साधना का प्रतीक बन गया, जिसने उन्हें वैश्विक स्तर पर सम्मान दिलाया।

कुटशब्द: सत्याग्रह, अहिंसा, आत्मसंयम, नैतिकता, संघर्ष, लोकसेवा

प्रस्तावना
मोहनदास करमचन्द गांधी, जिन्हें विश्व आज श्रद्धा से 'महात्मा गांधी' के नाम से जानता है, का यह रूप किसी जन्मसिद्ध उपाधि या सत्ता से प्रदत्त सम्मान का परिणाम नहीं था, बल्कि यह एक दीर्घकालिक नैतिक यात्रा, सतत आत्मसंघर्ष, सामाजिक अनुभवों और राजनीतिक प्रयोगों से गढ़ी गई पहचान थी। 'महात्मा' की उपाधि उन्हें केवल सम्मानार्थ नहीं दी गई, बल्कि यह भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में उनके नेतृत्व, सत्याग्रह की अवधारणा, तथा वैश्विक स्तर पर अहिंसात्मक प्रतिरोध के सिद्धांतों में उनके योगदान की व्यापक स्वीकृति थी (Parel, 2006: 14; Nanda, 2002: 8)।
गांधी का यह रूप—एक साधक, नेता और नैतिक दृष्टा—केवल राजनीतिक संघर्षों तक सीमित नहीं था, बल्कि वह भारतीय समाज में नैतिकता, सामाजिक सुधार और आत्मसंयम की एक व्यापक परियोजना के रूप में उभरा। इस शोधपत्र में गांधी के जीवन की उन निर्णायक घड़ियों और वैचारिक पड़ावों का विश्लेषण किया गया है, जिन्होंने उन्हें 'मोहनदास' से 'महात्मा' बनने तक की यात्रा में परिणत किया।

1. गांधी का प्रारंभिक जीवन और वैचारिक बीज (1869-1893)

मोहनदास करमचन्द गांधी का जन्म 2 अक्टूबर 1869 को पोरबंदर, गुजरात में एक परंपरागत वैष्णव परिवार में हुआ। उनके पिता करमचन्द गांधी एक ईमानदार दीवान थे और माता पुतलीबाई अत्यंत धार्मिक एवं नैतिक मूल्यों में आस्था रखने वाली महिला थीं। बाल्यकाल से ही गांधी के भीतर सत्य, आत्मसंयम और करुणा जैसे नैतिक गुणों का विकास हुआ, जिनका प्रभाव उनके जीवन के प्रत्येक चरण में स्पष्ट देखा जा सकता है (Nanda, 2002: 10)।
गांधी के वैचारिक निर्माण में पश्चिमी विचारकों की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। लियो टॉल्सटॉय की *The Kingdom of God is Within You* ने उन्हें गहन आत्मचिंतन, नैतिकता और अहिंसा की ओर प्रेरित किया। जॉन रस्किन की *Unto This Last* से उन्होंने श्रम की गरिमा और समानता के मूल्य सीखे, वहीं हेनरी डेविड थोरॉ की *Civil Disobedience* ने उन्हें सविनय अवज्ञा की अवधारणा से परिचित कराया (Parel, 2006: 18-21)। इन सभी ग्रंथों ने गांधी के नैतिक बोध को एक व्यापक दर्शन में रूपांतरित किया, जो आगे चलकर उनके राजनीतिक एवं सामाजिक दृष्टिकोण की नींव बना।
गांधी के जीवन के इस प्रारंभिक चरण में भारतीय धार्मिक परंपरा और पश्चिमी राजनीतिक-सामाजिक विचारों का जो समन्वय हुआ, वही आगे चलकर 'महात्मा' बनने की प्रक्रिया का वैचारिक बीज बन गया। यही वह समय था जब उन्होंने आत्म-संयम, ब्रह्मचर्य, और सत्य के प्रयोग की व्यक्तिगत साधना प्रारंभ की, जो उनके सार्वजनिक जीवन की आधारशिला बनी।

2. दक्षिण अफ्रीका में नैतिक आत्मबोध और सार्वजनिक जीवन का आरंभ (1893-1914)

गांधी का दक्षिण अफ्रीका प्रवास उनके जीवन का एक निर्णायक मोड़ सिद्ध हुआ। 1893 में एक वकील के रूप में वह दक्षिण अफ्रीका गए, जहाँ भारतीय समुदाय को नस्लीय भेदभाव, राजनीतिक अधिकारों की अनुपस्थिति और सामाजिक उपेक्षा का सामना करना पड़ रहा था। डर्बन से प्रिटोरिया की रेल यात्रा के दौरान उन्हें प्रथम श्रेणी का वैध टिकट होने के बावजूद केवल नस्लीय कारणों से ट्रेन से बाहर फेंक दिया गया—यह अनुभव गांधी के लिए केवल व्यक्तिगत अपमान नहीं था, बल्कि यह उनके आत्मसम्मान और न्यायबोध को चुनौती देने वाली घटना बन गई (Gandhi, 1927: 105)। यहीं से उनके भीतर असहिष्णुता और अन्याय के विरुद्ध नैतिक संघर्ष की चेतना उत्पन्न हुई।

दक्षिण अफ्रीका में अपने बीस वर्षों के प्रवास के दौरान गांधी ने भारतीयों के अधिकारों की रक्षा के लिए कई संघर्ष किए, जिनमें सबसे महत्त्वपूर्ण था 1906 में ट्रांसवाल में 'एशियाटिक रजिस्ट्रेशन एक्ट' के विरुद्ध सत्याग्रह आंदोलन। यह आंदोलन गांधी के राजनीतिक दर्शन की प्रयोगभूमि बना, जहाँ उन्होंने अहिंसा, आत्मबलिदान, आत्मशुद्धि और सत्य के प्रयोग को राजनीतिक संघर्ष से जोड़ा (Brown, 1991: 78; Parel, 2006: 44)। उन्होंने इसे 'सत्याग्रह' की संज्ञा दी—जो मात्र विरोध नहीं, बल्कि सत्य की खोज और नैतिक संवाद की प्रक्रिया थी।

गांधी ने फीनिक्स आश्रम (1904) और टॉल्सटॉय फार्म (1910) की स्थापना कर एक ऐसे नैतिक समुदाय की कल्पना को साकार किया, जहाँ ब्रह्मचर्य, श्रम, स्वावलंबन और सत्य की साधना की जाती थी (Nanda, 2002: 49)। यह प्रयोग न केवल उनके व्यक्तिगत नैतिक विकास का चरण था, बल्कि सार्वजनिक जीवन में उनके नेतृत्व और आचरण की नींव भी बना।

इस कालखंड में गांधी का रूप एक साधक से एक सार्वजनिक नैतिक नेता के रूप में विकसित हुआ। उन्होंने राजनीति को केवल सत्ता का माध्यम नहीं, बल्कि नैतिकता का उपकरण माना। दक्षिण अफ्रीका उनके लिए आत्मचिंतन की भूमि थी, जहाँ सत्य और अहिंसा जैसे सिद्धांतों को उन्होंने पहले स्वयं जिया और फिर उन्हें सार्वजनिक संघर्ष में परिणत किया।

3. भारत में आगमन और जनसंघर्षों से जुड़ाव (1915-1920)

दक्षिण अफ्रीका में दो दशकों तक सत्याग्रह और सामाजिक न्याय की साधना के उपरांत गांधी 1915 में भारत लौटे। उन्होंने गोपालकृष्ण गोखले की सलाह पर राजनीतिक गतिविधियों में प्रत्यक्ष भागीदारी से पहले भारत का व्यापक भ्रमण किया, जिससे उन्हें भारत की सामाजिक संरचना, ग्रामीण जीवन और औपनिवेशिक दमन की वास्तविकताओं का प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त हुआ (Nanda, 2002: 63)। इस चरण को गांधी ने आत्मशुद्धि और भारतीय समाज की आत्मा को समझने का काल माना।

गांधी का भारतीय राजनीतिक जीवन का पहला महत्त्वपूर्ण हस्तक्षेप 1917 में बिहार के चंपारण में नील की खेती करने वाले किसानों के साथ हुआ। स्थानीय किसानों को अंग्रेज़ नीलहों द्वारा जबरन खेती करने के लिए विवश किया जाता था। गांधी ने वहाँ सत्याग्रह के सिद्धांत के अंतर्गत किसानों के अधिकारों की रक्षा की, और प्रशासन को किसानों के पक्ष में निर्णय लेने पर विवश किया (Parekh, 1997: 62)। यह गांधी का भारत में पहला सार्वजनिक और सफल सत्याग्रह था, जिसने उन्हें राष्ट्रीय पहचान दिलाई।

इसके बाद खेड़ा (1918) में अकालग्रस्त किसानों से कर वसूली के विरुद्ध सत्याग्रह और अहमदाबाद मिल श्रमिक हड़ताल (1918) में न्यूनतम वेतन की माँग को लेकर संघर्ष गांधी के नेतृत्व में हुआ। इन आंदोलनों की विशेषता यह थी कि गांधी ने हिंसा की बजाय अहिंसात्मक प्रतिरोध और नैतिक संवाद को संघर्ष का माध्यम बनाया। इन आंदोलनों में जनसहभागिता, नैतिक अनुशासन और आत्मबलिदान जैसे गुणों की उपस्थिति ने गांधी को केवल राजनीतिक नहीं, बल्कि एक नैतिक जननेता के रूप में स्थापित किया (Brown, 1991: 92)।

इस कालखंड में गांधी का नेतृत्व एक ऐसे जननायक का रूप लेने लगा, जो जनता की भाषा बोलता था, उनके दुःख-दर्द में सहभागी होता था और संघर्ष को आत्मशुद्धि की प्रक्रिया मानता था। इन स्थानीय संघर्षों के माध्यम से गांधी ने भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन को ग्राम्य भारत की पीड़ा से जोड़ा और स्वतंत्रता संग्राम को नैतिक वैधता प्रदान की।

4. असहयोग और राष्ट्रीय आंदोलन का नेतृत्व (1920-1934)

1919 के जलियांवाला बाग हत्याकांड और रॉलेट एक्ट जैसे औपनिवेशिक दमनकारी उपायों ने भारतीय जनमानस में तीव्र असंतोष उत्पन्न किया। ऐसे वातावरण में गांधी ने 1920 में असहयोग आंदोलन का नेतृत्व करते हुए भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को जनांदोलन का रूप दिया। यह पहला अवसर था जब उन्होंने औपनिवेशिक सत्ता के विरुद्ध व्यापक जनसहभागिता के माध्यम से असहयोग की नीति को संगठित रूप में प्रस्तुत किया। उन्होंने विदेशी वस्त्रों की होली जलाने, सरकारी स्कूलों और नौकरियों से त्यागपत्र देने, तथा खादी के प्रयोग को राजनीतिक प्रतिरोध का माध्यम बनाया (Brown, 1991: 110)।

गांधी के असहयोग आंदोलन की विशेषता यह थी कि उसमें राजनीतिक स्वराज की माँग के साथ-साथ सामाजिक पुनर्रचना के कार्यक्रम भी शामिल थे। उन्होंने खादी के माध्यम से आर्थिक आत्मनिर्भरता, अस्पृश्यता-निवारण के ज़रिए सामाजिक समरसता, और ग्राम-स्वराज के विचार के माध्यम से लोकतांत्रिक स्वराज का सपना प्रस्तुत किया। उनके लिए स्वाधीनता केवल सत्ता-परिवर्तन नहीं, बल्कि नैतिक और सामाजिक परिवर्तन की परियोजना थी (Chatterjee, 1986: 108)।

1922 में चौरी-चौरा कांड के बाद गांधी ने आंदोलन को स्थगित कर दिया, यह निर्णय यद्यपि विवादास्पद था, परंतु यह उनके नैतिक आग्रह का परिचायक भी था—कि साधन और साध्य दोनों की शुद्धता अनिवार्य है (Parel, 2006: 52)। इसके बाद जेल यात्रा (1922-1924) और स्वास्थ्य-सम्बंधी कारणों से वे सक्रिय राजनीति से कुछ समय के लिए दूर रहे, लेकिन इस दौरान भी उन्होंने हरिजन सेवा, हिन्दू-मुस्लिम एकता, और खादी आंदोलन को गति दी।

1930 में नमक कानून के विरुद्ध सविनय अवज्ञा आंदोलन और प्रसिद्ध दांडी यात्रा ने गांधी के नेतृत्व को वैश्विक स्तर पर प्रतिष्ठा दिलाई। यह यात्रा औपनिवेशिक सत्ता की वैधता को अहिंसात्मक तरीके से चुनौती देने का साहसिक और रचनात्मक प्रयोग थी (Nanda, 2002: 136)। लंदन में आयोजित गोलमेज सम्मेलन में भागीदारी और बार-बार की गिरफ्तारियों ने गांधी की छवि को जनमानस में एक तपस्वी और नैतिक योद्धा के रूप में और अधिक सुदृढ़ किया।

इस कालखंड तक गांधी की 'महात्मा' की छवि केवल भारतीय नहीं रही, वह अब एक सार्वभौमिक नैतिक नेतृत्व का प्रतीक बन चुकी थी। उनके राजनीतिक संघर्ष नैतिक अनुशासन, सेवा और सामाजिक न्याय के मूल्यों से इस तरह जुड़ चुके थे कि स्वतंत्रता संग्राम केवल एक राजनीतिक मुहिम नहीं, बल्कि एक आत्मिक आंदोलन बन गया था।

5. दांडी यात्रा और सविनय अवज्ञा (1930)

1930 का दांडी यात्रा भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में न केवल एक निर्णायक राजनीतिक घटना थी, बल्कि यह गांधी के नैतिक और वैचारिक नेतृत्व की पराकाष्ठा भी सिद्ध हुई। नमक जैसी जीवनोपयोगी वस्तु पर ब्रिटिश एकाधिकार के विरुद्ध प्रतिरोध का माध्यम बनाकर गांधी ने प्रत्यक्ष राजनीतिक विषयों को जनजीवन के दैनिक सरोकारों से जोड़ा। उन्होंने 12 मार्च 1930 को साबरमती आश्रम से 78 सत्याग्रहियों के साथ 240 मील की पदयात्रा आरंभ की और 6 अप्रैल को समुद्र तट पर नमक उठाकर ब्रिटिश कानून का शांतिपूर्ण उल्लंघन किया (Nanda, 2002: 136)। यह केवल एक विधिक उल्लंघन नहीं था, बल्कि औपनिवेशिक सत्ता की नैतिक वैधता को चुनौती देने वाला क्रांतिकारी कदम था।

दांडी यात्रा ने अहिंसा की शक्ति को एक जनक्रांति के रूप में रूपांतरित किया। इस यात्रा के माध्यम से गांधी ने यह स्पष्ट कर दिया कि राजनीतिक स्वतंत्रता केवल उच्चवर्गीय नेतृत्व या अधिवक्ताओं की सीमित लड़ाई नहीं है, बल्कि यह जनता के आत्मसम्मान और नैतिक चेतना का प्रश्न है (Brown, 1991: 148)। ग्रामीण भारत की व्यापक भागीदारी और महिलाओं की सक्रिय उपस्थिति ने इस आंदोलन को एक समावेशी स्वरूप प्रदान किया।

सविनय अवज्ञा आंदोलन, जिसके तहत इस यात्रा को संपन्न किया गया, का तात्पर्य था—कानून का उल्लंघन करते हुए भी राज्य के प्रति घृणा नहीं, बल्कि एक नैतिक अपील। गांधी के शब्दों में, "यह एक आत्मा की पुकार है जो सत्ता की हिंसा के स्थान पर सत्य के नैतिक बल में विश्वास करती है" (Gandhi, 1927: 185)। इस आंदोलन के दौरान देशभर में विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार, सरकारी संस्थानों से इस्तीफा, और स्वदेशी उत्पादों के प्रयोग जैसे उपायों को जनजागरण का रूप मिला।

ब्रिटिश शासन की प्रतिक्रिया कठोर थी—गांधी सहित हजारों सत्याग्रही गिरफ्तार किए गए। लेकिन इस दमन के बावजूद यह आंदोलन भारतीय जनता में नई चेतना का संचार कर गया। साथ ही, यह घटना अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भारत के स्वतंत्रता संग्राम को नैतिक वैधता और वैश्विक सहानुभूति दिलाने में सफल रही। न्यूयॉर्क टाइम्स, मैनचेस्टर गार्जियन जैसे अख़बारों ने गांधी की पदयात्रा और शांतिपूर्ण प्रतिरोध को अत्यंत प्रभावशाली नैतिक प्रयोग के रूप में प्रस्तुत किया (Parel, 2006: 66)।

दांडी यात्रा गांधी के लिए केवल राजनीतिक प्रदर्शन नहीं थी; यह उनकी आंतरिक साधना और बाह्य संघर्ष का समन्वित स्वरूप थी, जिसमें आत्मशक्ति को राज्यसत्ता की हिंसा से ऊपर सिद्ध करने का नैतिक साहस था।

6. भारत छोड़ो आंदोलन और अंतिम दौर (1942-1948)

1942 का *भारत छोड़ो आंदोलन* गांधी के नेतृत्व में भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का अंतिम और सबसे तीव्र राष्ट्रव्यापी आंदोलन था। अगस्त क्रांति के रूप में प्रसिद्ध यह आंदोलन 8 अगस्त 1942 को मुंबई के *ग्वालिया टैंक मैदान* में कांग्रेस के अधिवेशन में पारित "अंग्रेज़ो भारत छोड़ो" प्रस्ताव से आरंभ हुआ। गांधी का नारा था—"करो या मरो" (Do or Die)। यह आंदोलन ब्रिटिश सत्ता को स्पष्ट संदेश था कि भारत अब पूर्ण स्वतंत्रता के अतिरिक्त किसी भी मध्यवर्ती समाधान को स्वीकार नहीं करेगा (Nanda, 2002: 162)।

आंदोलन के तुरंत बाद गांधी, नेहरू, सरदार पटेल सहित समस्त कांग्रेस नेतृत्व को बंदी बना लिया गया। यद्यपि यह आंदोलन अपने हिंसात्मक रूप और असंगठित स्वरूप के कारण कुछ समय पश्चात दबा दिया गया, फिर भी इसने स्वतंत्रता की माँग को निर्णायक बना दिया। गांधी स्वयं तीन वर्ष तक जेल में रहे, जहाँ उनकी पत्नी कस्तूरबा गांधी का निधन हुआ और उनका स्वास्थ्य भी अत्यंत क्षीण हो गया (Brown, 1991: 192)।

जेल से रिहा होने के बाद गांधी का ध्यान राजनीति से हटकर सांप्रदायिक एकता की ओर केंद्रित हो गया। 1946-47 के कालखंड में जब देश विभाजन की ओर अग्रसर हो रहा था, गांधी ने अपने को स्वतंत्रता के शोरगुल से अलग कर लिया और हिन्दू-मुस्लिम एकता की पुनर्स्थापना को अपना केंद्रीय अभियान बनाया। उन्होंने न केवल दंगाग्रस्त क्षेत्रों का दौरा किया, बल्कि कोलकाता और दिल्ली में उपवास के माध्यम से सांप्रदायिक तनाव को शांति में परिवर्तित करने का ऐतिहासिक प्रयास किया (Chatterjee, 1986: 121)।

स्वतंत्रता के ठीक बाद 30 जनवरी 1948 को नाथूराम गोडसे द्वारा उनकी गोली मारकर हत्या कर दी गई। यह केवल एक व्यक्ति की नहीं, बल्कि एक नैतिक युग की समाप्ति थी। गांधी के विचारों की गूंज पूरे भारत में नहीं, बल्कि वैश्विक स्तर पर थी—और है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर द्वारा बहुत पहले दी गई *"महात्मा"* की उपाधि अब केवल एक काव्यात्मक विशेषण नहीं, बल्कि नैतिक नेतृत्व का सार्वभौमिक प्रतीक बन चुकी थी (Parel, 2006: 78)।

गांधी का अंतिम दौर हमें यह स्मरण कराता है कि उनकी दृष्टि में स्वतंत्रता केवल सत्ता परिवर्तन नहीं, बल्कि सामाजिक समरसता, धार्मिक सहिष्णुता और आत्मिक शुद्धि की प्रक्रिया थी। उनकी मृत्यु के पश्चात उनके विचारों ने मानवाधिकार, अहिंसा और नागरिक आंदोलनों के वैश्विक विमर्श को निरंतर प्रेरणा दी।

निष्कर्ष

महात्मा गांधी का जीवन यह दर्शाता है कि 'महात्मा' की उपाधि कोई औपचारिक सम्मान नहीं, बल्कि एक नैतिक साधना, आत्मानुशासन और सामाजिक समर्पण की परिणति होती है। गांधी का 'महात्मा' बनना एक ऐतिहासिक दुर्घटना नहीं, बल्कि एक सतत वैचारिक और नैतिक प्रक्रिया थी, जो सत्य, अहिंसा, आत्मसंयम और सामाजिक न्याय जैसे मूल्यों के प्रयोग और आचरण से बनी।

दक्षिण अफ्रीका की प्रयोगभूमि से लेकर भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के प्रत्येक मोर्चे तक, गांधी ने सार्वजनिक जीवन को नैतिक आचरण और आध्यात्मिक अनुशासन के साथ जोड़ा। उनकी राजनीति केवल सत्ता-विरोध नहीं, बल्कि आत्मिक शुद्धि, सामाजिक उत्थान और मानवीय करुणा की परियोजना थी। चाहे वह चंपारण का किसान संघर्ष हो, नमक सत्याग्रह की दांडी यात्रा, या सांप्रदायिक दंगों में शांति स्थापना के लिए किया गया उपवास—गांधी का प्रत्येक कदम एक नैतिक प्रयोग था, जिसमें जनता को केवल आंदोलित ही नहीं, आत्मबोधित भी किया गया।

गांधी का 'महात्मा' बनना इस बात का प्रमाण है कि भारतीय परंपरा में नेतृत्व केवल संगठन या वाणी से नहीं, बल्कि त्याग, संयम, और लोकमंगल की अखंड साधना से जन्म लेता है। यह यात्रा भारत की नैतिक चेतना और आध्यात्मिक आधुनिकता की भी यात्रा थी, जिसमें एक साधारण व्यक्ति ने स्वयं को लोकस्वीकृत और वैश्विक नैतिकता के प्रतीक में रूपांतरित किया।

उनकी जीवनयात्रा आज भी इस प्रश्न को उद्घाटित करती है—क्या राजनीति केवल सत्ता की कला है, या वह नैतिकता, सेवा और आत्म-सत्य की साधना भी हो सकती है? गांधी के जीवन और विचार इस प्रश्न के उत्तर के रूप में उपस्थित हैं।

संदर्भ सूची (References)

1. Brown JM. Gandhi: Prisoner of Hope. New Haven: Yale University Press; 1991.
2. Chatterjee P. Nationalist Thought and the Colonial World: A Derivative Discourse? Delhi: Oxford University Press; 1986.
3. Gandhi MK. The Story of My Experiments with Truth, trans. Mahadev Desai. Ahmedabad: Navajivan Publishing House; 1927.
4. Nanda BR. Mahatma Gandhi: A Biography. Delhi: Oxford University Press; 2002.
5. Parekh B. Gandhi: A Very Short Introduction. Oxford: Oxford University Press; 1997.
6. Parel AJ. Gandhi's Philosophy and the Quest for Harmony. Cambridge: Cambridge University Press; 2006